Chapter - 6

षष्ठ अध्याय

"उपसंहार"

अध्याय – 6

उपसंहार

दलित साहित्य, साहित्य लेखन की चर्चित साहित्यिक नवीन विधा के रुप में उभर कर सामने आया है। इसके अंतर्गत उन लोगों के हितों की वकालत की जाती है, जो सदियों से शोषित, पीड़ित और उपेक्षित रहे हैं। दलित शब्द भले ही आधुनिक हो किन्तु इसके अर्थ की व्याप्ति प्राचीनकाल से चली आ रही है। प्राचीन काल से भारतीय समाज में नारियों विशेषकर दलित नारियों के शोषण की अमानवीय परिपाटी चली आ रही है। यह परिपाटी उन्हीं विकृतियों के साथ बहुत कुछ आज भी समाज में विद्यमान है। इस तरह सदियों से स्त्रियों पर अनगिनत अत्याचार होते चले आए हैं। दलित स्त्री तो शोषितों में भी अति शोषित है। स्वतंत्रता और समानता के अधिकार से तो उसे सदा से ही वंचित रखा गया है। जाति के आधार पर शोषण हमारे समाज की कड़वी सच्चाई है तो जेंडर के आधार पर अत्याचार भी उसी समाज की वास्तविकता है। शुरु में दलित लेखकों ने दलित स्त्री के प्रश्न पर ध्यान नहीं दिया था लेकिन कालांतर में उनकी दृष्टि इस ओर गई और उनकी रचनाओं में स्त्री–पीड़ा को भी स्थान मिलने लगा। दलित समाज के भीतर स्त्री का महत्त्वपूर्ण योगदान होने के बावजूद उसके साथ होने वाला भेदभाव विशेष चर्चा का विषय बना जब स्वयं दलित स्त्रियों ने अपनी स्थिति का बयान करना शुरु किया। दलित स्त्री तिहरे शोषण को झेलती है। एक तरफ वह स्त्री है इसलिए उसका शोषण होता आया है। दूसरे जाति विशेष में होने के कारण और तीसरे आर्थिक स्थिति की कमजोरी के कारण वह पीसती आई है। जिन प्रबुद्ध स्त्रियों ने दलित पितृसत्ता पर सवाल खड़े किए उनमें विमल थोरात, कौशल्या बैसंत्री, सुशील टाकभौरे, रजनी तिलक, रजत रानी 'मीनू', अनीता भारती आदि नाम प्रमुखता से लिए जा सकते हैं। दलित साहित्य में अपनी उपेक्षा का अनुभव कर दलित स्त्री अपनी समस्या, अपने प्रश्न को जितने यथार्थ रुप से प्रस्तुत कर सकती है, उतना एक पुरुष नहीं कर सकता। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि दलित साहित्य में पुरुषों द्वारा लिखे गए साहित्य में स्त्री प्रश्नों को सही ढंग से नहीं उकेरा गया है। दलित साहित्य का उद्‌भव ही शोषण, अत्याचार, के विरुद्ध समानता, मुक्ति पाने के लिए हुआ है, ऐसे में दलित स्त्री की संवेदना को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करके उसके प्रति होने वाले अन्याय को रोकने का प्रयास और उसके प्रश्नों के जन समुदाय तक पहुँचाकर उसकी स्थिति में सुधार लाना कहा जा सकता है।

दलित स्त्रियों की सामाजिक धार्मिक, शैक्षणिक और आर्थिक स्थिति को देखते हुए यह समझा जा सकता है कि दलित नारी सदियों से किस तरह अन्याय पूर्ण, कष्टमय जीवन जी रही हैं। किस तरह के संताप भोग रही है।

इक्कीसवीं सदी में हमारे देश ने प्रगति की बुलंदियों को छू लिया है। एक तरफ विज्ञान बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहा है और दूसरी तरफ मनुष्य अपनी सोच के दायरे को और भी संकुचित करता जा रहा है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि यथार्थ में दलित महिलाओं के साथ सवर्णों द्वारा अमानवीय, अत्याचार, दुर्व्यवहार, बलात्कार उनके संघर्ष की चेतना कुंद करने और उनके दमन का सबसे घिनोना हथियार रहा है। देश में महिलाएँ कहीं भी सुरक्षित नहीं हैं। दलित महिलाएँ तो हवस के भूखे भेड़ियों की

आए–दिन शिकार होती रहती हैं। हमारे देश की विडंबना है कि जब किसी बड़े घर की बेटी, विदेशी या फिर नामी–गिरामी हस्ती के साथ बलात्कार होता है, तो बड़े चिंतित होते हैं लोग, किन्तु गरीब दलित की लड़की के साथ बलात्कार होता है, तो किसी को कोई फर्क नहीं पड़ता। हमारे समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग अर्थात् निचले तबके के लोग आज भी शोषण और अत्याचार की चक्की में पिस रहे हैं। उसमें भी दलित नारी की दयनीय स्थिति व्यथा, उन पर होने वाले अत्याचार, उनका संघर्ष, उनमें आई चेतना, उनके प्रश्न, उनकी घुटन, उनकी आशाएँ उपेक्षाएँ हाशिए की स्थिति आदि कटु यथार्थ को उद्‌घाटित करने का प्रयास "हिन्दी और गुजराती की दलित कहानियों में नारी संवेदना का तुलनात्मक अध्ययन" (1980–2008) में किया गया है।

दलित समाज में जागृति लाने और संपूर्ण समाज में मानवीय गरिमा तथा स्वाभिमान का आंदोलन छेड़ने में ज्योतिबा फुले, सावित्री फुले, डॉ. भीमराब अंबेडकर का अभूतपूर्व योगदान रहा है, फुले और उनकी जीवन संगिनी सावित्री बाई फुले ने स्त्रियों की शिक्षा के लिए स्कूल खोले और अनेक हमले झेलते हुए अपना अभियान जारी रखा। ज्योतिबा फुले और डॉ. भीमराव अम्बेडकर की कर्मभूमि महाराष्ट्र समाज सुधार आंदोलनों और परिवर्तनवादी लेखन के मामले में अन्य प्रांतों की अपेक्षाकृत आगे रहा। मराठी में दलित लेखन का प्रभाव हिन्दी गुजराती एवं अन्य भारतीय भाषाओं के लेखन पर पडना स्वाभाविक था।

पुरानी पीढ़ी से प्रेरणा लेती हुई दलित लेखकों की नई पीढ़ी सामने आई। इस नई पीढ़ी के प्रमुख हस्ताक्षरों में हिन्दी के साहित्यकार **ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, कंवल भारती, सी. बी. भारती, श्यौराज सिंह बेचैन, कुसुम मेघवाल, कर्मशील भारती, जयप्रकाश कर्दम, विपिन बिहारी, जय प्रकाश लीलावान, रजतरानी 'मीनू'**, आदि है। गुजराती में **जोसेफ मेकवान, बी. केशरशिवम्, मोहन परमार, हरीश मंगलम्, प्रवीण गढवी, चन्द्राबहन श्रीमाली, विट्ठलराय श्रीमाली, मधूकांत कल्पित, पुष्पा माधड, हरिपार**, आदि कहानीकार हैं। स्त्री और पुरुष दोनों मानव हैं। अतः उनमें मूल मानवगत वृत्तियाँ समान होती हैं परंतु दोनों के संस्कार अनुभव भिन्न हो सकते हैं, क्योंकि कुछ अनुभव ऐसे हैं जिनसे केवल स्त्री ही गुजरती है स्त्रियों से भी सवर्ण स्त्री से दलित स्त्री के इस अनुभव की यह एकांतिकता जहाँ उसके विश्व को सीमित करती है, वहाँ उसके वैशिष्ट्य भी प्रदान करती है। प्रस्तुत शोध प्रबंध में ऐसी ही दलित स्त्री की संवेदना को रेखांकित करने का एक नम्र प्रयास हुआ है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का विषय दलित साहित्य से जुड़ा हुआ है, अतः दलित कौन? यह दलित विमर्श का आधारभूत बहस है। इसलिए दलित शब्द का संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी भाषा में शब्दकोशीय अर्थ क्या है, यह जान लेना आवश्यक है। मेरे विचार से सदियों से जिस जाति का शोषण हुआ है, जिन्हें उपेक्षित जीवन जीने के लिए विवश किया गया है, जो सवर्णों द्वारा रौंदे गए हैं, जिन्हें हीन समझा गया है, अस्पृश्य, अछूत कहकर जिन्हें प्रताड़ित किया गया है, ऐसे सभी लोग दलित कहे जा सकते है, दलित शब्द का अर्थ निश्चित कर लेने के बाद यह जानना शेष रह जाता है कि दलित साहित्य किसे कहते हैं। दलित साहित्य की परिभाषा का प्रश्न तब उठा जब दलितों द्वारा लिखा साहित्य सामने आया और उसे दलित साहित्य कहा गया तब यह विवाद खड़ा हुआ कि दलित साहित्य के भीतर किस लेखन को रखा जाए। इस बात पर अधिकतर विद्वान सहमत रहे हैं कि जिस रचना में दलित जीवन और दलित प्रश्न केन्द्रीय हो वह दलित साहित्य है। किन्तु जन्मना दलित साहित्यकार और जो जन्म से

दलित नहीं हैं ऐसे साहित्यकारों द्वारा रचित दलित साहित्य दोनों के बीच बहस उठ खड़ी हुई। मेरे विचार से जिस साहित्य में दलितों के जीवन से जुड़ी समस्याओं, उनकी पीड़ा, वेदना, प्रश्नों, जीवन का यथार्थ रुप में चित्रण किया गया हो वह दलित साहित्य है चाहे वह गैर दलित द्वारा संवेदना के आधार पर लिखा गया हो या अनुभव के आधार पर दलितों द्वारा लिखा गया हो। किसी भी साहित्य को इस तरह सीमा में बाँधने से उसका विकास अवरुद्ध होता है। अतः हर साहित्य की तरह दलित साहित्य लेखन के लिए दलित, गैरदलित सभी को स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिए। कालीचरण 'स्नेही', वसन्त पाटणकर, राजमणिशर्मा, ओमप्रकाश वाल्मीकि, के. सच्चिदानन्द, जयप्रकाश कर्दम, रमणिका गुप्ता, श्योराज सिंह बेचैन, तेजसिंह, राजनी तिलक, राजकुमार सैनी आदि साहित्यकारों के विविध मंतव्यों को जानने के लिए उनके द्वारा रचित ग्रंथ एवं लेखों को पढ़ जाना आवश्यक है।

दलित साहित्य का प्रयोजन क्या है ? यह प्रश्न दलित साहित्य के लिए विशिष्ट है। दलित साहित्य का प्रयोजन सबसे विशेष है, वह है सदियों से शोषित, वंचित दलितों में 'आत्मबल' और 'आत्मसम्मान' की भावना जागृत करना। दलित साहित्य के एक मात्र प्रयोजन है दलितों का उत्थान करना। हिन्दी और गुजराती दलित साहित्य का उद्‌भव भले ही मराठी से प्रेरणा लेकर हुआ है, किन्तु आज इन दोनों भाषाओं में दलित साहित्य हर विधा में विकास की ओर बढ़ रहा है। विविध भाषाओं में दलित साहित्य रचना की बढ़ती संख्या को देखते हुए दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र को लेकर भी विवाद खड़े हुए हैं। वास्तव में यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि दलित साहित्य की पहचान उसकी 'कला साधना' से न होकर विषय वस्तु से हुई है। शिल्प और कला का प्रश्न उसके लिए प्राथमिक नहीं है प्राथमिक है अन्तर्वस्तु। दलित साहित्य पाठकों के मनोरंजन करने, उन्हें आनंद प्रदान करने के लिए नहीं बल्कि दलित साहित्य दलितों की आत्मानुभुति की अभिव्यक्ति करके दलितों की पीड़ा, वेदना को प्रस्तुत करता है। इसीलिए कुछ लोग इसे सिर्फ वेदना का साहित्य भी कहते हैं। साहित्य को समाज का दर्पण इसीलिए कहा जाता है, क्योंकि साहित्य में वही प्रस्तुत होता है जो समाज में घटित होता है।

दूसरे अध्याय में हिन्दी की दलित कहानियों में नारी संवेदना को प्रस्तुत किया गया है। सन् 1980 से सन् 2008 तक की हिन्दी दलित कहानियों में 'बदबू', 'इस समय में', 'क्रान्ति', (राजवाल्मीकि) 'सूरज', 'सांग', 'लाठी', (जय प्रकाश कर्दम) 'युज एण्ड थ्रो', (डॉ. पूरन सिंह) और 'वह पढ़ गई', 'अंतिम बयान',(डॉ. कुसुम वियोगी) 'रिश्वत', 'सुमंगली', (कावेरी) 'सिलिया', 'मेरा समाज', (सुशीला टाकभौरे) 'मैं मइया थी' (सरिता भारत) 'सुनीता', हम कौन हैं ?', (रजतरानी 'मीनू') 'अब का समय' (प्रहलाद चन्द्रदास) 'सनातनी' (अमर स्नेह) 'कर्फ्यू' (अखिलेश कुमार) 'खटिया की जाति' (सुरेन्द्र नायक) 'फुलवा', 'डंक', 'बात', (रत्नकुमार सांभरिया) 'हरिजन' (प्रेम कपाड़िया) 'उपमहाद्वीप' (अजय नावरिया) 'मजूरी', 'कर्ज़', 'अपना मत', 'दर्द', 'आधा सेर घी', (मोहनदास नैमिशराय) 'अत्तू और अम्मा', 'साजिश', 'अंगूरी', (सूरजपाल चौहान) 'जंगल की रानी', 'अम्मा', 'चिड़ीमार' 'अंधड', (ओमप्रकाश वाल्मीकि) 'बीती रात अंधेरी', 'अंगारा', 'मंगली' (कुसुम मेघवाल) 'उसका फैसला' (कालीचरण प्रेमी) 'बंदरिया' (लखनलाल पाल) 'मरीधार' (विजयकांत) 'पहली रात का अंत' (उमेश कुमार सिंह) 'लोकतंत्र में बकरी' (उषा चन्द्रा) 'टटूता वहम', 'बदला' (डॉ. सुशीला टाकभौरे) 'भूख' (डॉ.सी.बी. भारती) 'कफ़न' (रुपनारायण सोनकर) 'आतंक' (राजेश कुमार बौद्ध) 'जंगल में आग' (गौरीशंकर

नागदंश) 'रम्पो का चेहरा' (उमेश कुमार सिंह) जैसी कहानियों का अध्ययन प्रस्तुत प्रबंध में किया गया है। यहाँ कुछ दलित शिक्षित महिलाएँ हैं तो कुछ दलित अशिक्षित महिलाएँ भी। दलित कामकाजी महिलाओं का शोषण किया जाता है तो कभी पारिवारिक शोषण का शिकार दलित महिलाएँ होती हैं। परिवार में पति एवं पिता की भूमि का महत्त्वपूर्ण रहती है दलित महिला को इन्हीं से संघर्ष करने के लिए ऊर्जा मिलनी चाहिए, किन्तु ऐसा न होने पर भी दलित महिलाएँ कमजोर नहीं बनती है। निम्न वर्गीय समाज में नारी अपेक्षाकृत अधिक उन्मुक्त है क्योंकि परिवार के आर्थिक दायित्वों में उसका बराबर का सरोकार रहता है।

तीसरे अध्याय में गुजराती की दलित कहानियों में नारी की संवेदना को आलोच्य मुद्दे पर विचार हुआ है। **'जेल की रोटी', 'मेना', 'जोगन', 'मंकोड़ा', 'चमड़ी घीसने की वेदना', 'राजीनामा' (बी. केशरशिवम्) 'थड़ी', 'कडण', (डॉ. मोहन परमार) 'सोमली' (हरिपार) 'सपाटु पहेरवानु मन', 'दरुपदी', 'गाठाण', (प्रवीण गढ़वी) 'रखोपा का साँप' (अरविन्द वेगड़ा) 'दाझवुंते', 'नरक' (धरमाभाई श्रीमाली) 'भींस' (मौलिक बोरीजा) 'छगना को न समझ में आते सवाल', 'रोटलो नजराइ गयो' (जोसेफ मेकवान) 'दायण', एबोर्शन' (हरीश मंगलम्) 'अधूरा पुल' (मधुकान्त कल्पित) 'मेली मथरावटी' (राघवजी माधड़) 'सपायडो' (विट्ठलराय श्रीमाली) 'झाड़' (हसमुख वाघेला) 'गोमती' (पुष्पा माधड़) 'सगपण' (प्रज्ञा पटेल) 'नवी' (योगेश जोषी) 'फुट रे भुंडा' (प्रतीम लखमाणी) 'रोकड़ी', (चन्द्रा बहन श्रीमाली) 'गोरुचंदन', वंटोड', (भी. न. वणकर) 'गंगा माँ', 'मुंझारो', (दलपत चौहान) 'रेड कार्पेट', 'शैली का व्रत', 'मुखिया का भांजा', 'सांकडा' (विट्ठलराय श्रीमाली) 'गूँगी चीख' (हरीशकुमार मकवाणा) 'बोटेली वस' (डॉ. केशुभाई देसाई) 'होड़' (अरविंद वेगडा) 'लोही की लागणी' (डेनियल मेकवान) 'कुलदीपक' (शेलेष कुमार किस्टी) आदि** लगभग 62 कहानियों को आधार रुप में लेते हुए गुजराती की दलित कहानियों में नारी की संवेदनाओं को विश्लेषित किया गया है। इस अध्ययन से कई तथ्य सामने आए हैं। दलित महिलाओं की अपनी समस्याएँ हैं, उनका जातीय शोषण किया जाना, सवर्णों की स्वार्थपरता का शिकार होना, परंपरा के प्रति दलित स्त्री का विद्रोह है, तो शोषण के प्रति भी दलित स्त्री का विद्रोह देखा जा सकता है। मात्र बाह्य लोग ही दलित स्त्री का शोषण नहीं करते पारिवारिक शोषण को भी दलित स्त्री झेलती है। गरीबी यह दलित स्त्री की बड़ी समस्या है, जिससे वह जीवनभर सहती है। गरीबी के कारण ही दलित महिला को न चाहते हुए भी शोषण सहना पड़ता है।

इस शोध प्रबंध के चतुर्थ अध्याय में हिन्दी और गुजराती की दलित कहानियों में नारी संवेदना का तुलनात्मक अध्ययन पर अपने सामर्थ्य के अनुसार विचार–विमर्श किया गया है। हिन्दी और गुजराती कहानियों में दलित महिलाओं की कई समस्याएँ समान हैं जैसे अस्पृश्यता की समस्या, जिसे दलित नारी आजीवन झेलती है, जातीय शोषण को वे परंपरागत रुप से सहती आई हैं। इस शोषण के क्या कारण है ? और किन विवशताओं के कारण दलित महिलाएँ आज भी यह शोषण सह रही हैं, इस समस्या पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। सवर्णों पर आर्थिक निर्भरता, गरीबी, भुखमरी, की समस्या दलित महिलाओं को सदियों से संवर्णो की गुलामी करने पर विवश करती आई है। पेट की भूख उनसे कौन से कार्य नहीं करवाती ? यह कहानियों के माध्यम से उद्‌घाटित करने का प्रयास किया है। सवर्ण पुरुषों की हवस का शिकार दलित महिलाएँ हमेशा होती आई हैं, तो कई बार छलपूर्वक भी उनका जातीय शोषण किया जाता है। दलित स्त्री केवल बाहरी व्यक्तियों द्वारा ही शोषित हाती है ऐसा नहीं है

पितृ सत्तात्मक समाज में उसके परिवार के पुरुषों द्वारा भी उसका शोषण होता है। **'सुनीता', 'उसका फैसला', 'बदबू', 'नरक', 'इसमें सीता का क्या दोष',** जैसी कहानियों में यह समस्या देखी जा सकती है। वर्तमान समय में शिक्षित दलितों में जातिगत हीनभावना की समस्या भी गंभीर समस्या बनती जा रती है। जिसके शिक्षित दलित अपनी ही जाति के लोगों से किनारा करते देखे जा सकते हैं। जातिगत हीनताबोध के कारण दलित को मनोवैज्ञानिक दबाव से गुजरना पड़ता है। सवर्ण समाज में मान सम्मान पाने के लिए दलित अपने परिवार के लोगों से भी मतभेद करने को तैयार हो जाते हैं। हिन्दी और गुजराती की दलित कहानियों के अध्ययन के दौरान एक बात स्पष्ट होती है कि पुरुष लेखकों की उपेक्षा स्त्री लेखन में दलित नारी की संवेदना का चित्रण अधिक सघन रुप में प्रस्तुत हुआ है। हिन्दी और गुजराती के विभिन्न क्षेत्रों से ली गई दलित कहानियों के आधार पर कहा जा सकता है कि चाहे भारत का कोई भी प्रदेश हो सभी जगह दलित स्त्री की स्थिति समान है। क्योंकि जिस तरह आसमान सभी जगह नीला होता है और कौए सभी जगह काले होते हैं। यह बात दलित नारी के विषय में भी उसी तरह कड़वी सच्चाई बनकर हमारे समक्ष आती है, कि चाहे हिन्दी की दलित कहानी हो या गुजराती की, दलित नारी की स्थिति अधिकतर समान ही है। हिन्दी और गुजराती कहानियों में क्रमशः **'अम्मा', 'क्रान्ति', 'टूटता वहम', 'सिलिया', 'रम्पो का चेहेरा', 'बात', 'मंगली', 'पहली रात का अंत', 'मंकोड़ा', 'थडी', 'गंगामाँ', 'राजीनामा', 'रोटलो नजराई गयो', 'दायण', 'सोमली',** जैसी कहानियों में नारी संवेदना सघन रुप से मिलती है। परिवेश की दृष्टि से हिन्दी और गुजराती की दलित कहानियों में शहरी ग्रामीण परिवेश का वर्णन है, तो कई कहानियाँ ऐसी है जहाँ शहरी एवं ग्रामीण दोनों परिवश में दलितों का जीवन उनकी यथार्थ स्थिति को प्रस्तुत करने वाला है।

इस अध्ययन के दौरान दलित महिलाओं के जीवन के विभिन्न पहलुओं, रहस्यों, रुपों, समस्याओं, परिस्थितियों आदि से गुजरने का अवसर मिला है। जिसके कारण कई ऐसी महिलाओं के चेहरे सामने आए हैं। दलित जाति में जन्म लेने वाली महिलाएँ बचपन से ही अस्पृश्यता, असमानता, लिंग भेद, गरीबी, अत्याचार, अपमान, शोषण आदि को झेलती हैं। इसीलिए दलित नारी का शोषित, दमित, पीड़ित, अतिश्रमिक रुप मिला है, वहाँ इन सबके बावजूद कुछ महिलाएँ ऐसी भी मिलती हैं जो शोषण के प्रति विद्रोह करने वाली तेज, तर्रार, जुझारु और संघर्षशील हैं, जिनकी जितनी तारीफ की जाय कम है। प्रस्तुत शोध–प्रबंध में ऐसी व्यक्तित्व सम्पन्न नारियों को उनकी विशेषताओं के कारण अलगाने और विश्लेषित करने का एक सन्निष्ट प्रयत्न हुआ है। समूचा पंचम अध्याय इनको समर्पित है। ये व्यक्ति सम्पन्न नारियॉ शिक्षित दलित नारियाँ ही हैं ऐसा नहीं है कुछ तो अतिसामान्य और अकिंचन परिवेश से आई हैं। **'सिलिया'** की सिलिया **(सुशीला टाकभौरे) 'मंगली'** की मंगली **(डॉ. कुसुम मेघवाल) 'सुनीता'** की सुनीता **(रजत रानी 'मीनू') 'साजिश'** की शान्ता **'अंगूरी'** की अंगूरी **(सूरजपाल चौहान) 'जोजना'** की सुकिया **(दीपक कुमार 'अज्ञात) 'अम्मा'** की अम्मा **(ओमप्रकाश वाल्मीकि) 'क्रान्ति'** की क्रान्ति **(राज वाल्मीकि) 'सनातनी'** की चन्द्रो **(अगर स्नेह) 'रम्पो का चेहरा'** की रम्पो **(उमेश कुमार सिंह) 'थडी'** की रेवी **(मोहन परमार) 'सोमली'** की सोमली **(हरिपार) 'राजीनामा'** की सीमा, **'मंकोडा'** की संतोक **'राती रायण की रताश'** की केशली **(बी. केशरशिवम्) 'दायण'** की बेनीमा **(हरीश मंगलम्) 'सांकडा'** की लाली, **'शैली का व्रत'** की शैली **(विट्ठलराय श्रीमाली)** आदि का समावेश हो सकता है जो अपनी व्यक्तित्व की गध से पाठकों को मुग्ध कर देती हैं। इन नारी पात्रों की बुद्धि प्रतिभा, उनकी निरन्तर

संघर्ष–क्षमता, उनका अदम्य साहस, उनका आत्मविश्वास उन्हें अन्य भीरु, अबला, सहमे, कमजोर पात्रों से अलगाता है। ये नारी पात्र दलित नारी चेतना को अग्रसर करते हैं और हमारे देश में अवहेलना को झेलने वाली दलित नारी को न्याय दिलाने की निरन्तर कोशिश में जूझते रहते हैं। समाज में कुछ ऐसी दलित नारियाँ होती हैं जिनके कारण ही कहानी लेखन में इस प्रकार के अपवाद कहे जा सकने वाले पात्रों की निर्मित संभव हो सकी हैं। अतः इन नारी पात्रों को हम इस रुप में ले सकते हैं कि दलितों के भविष्य का इतिहास इनके द्वारा रचा जाएगा। दलित समाज में ऐसी स्त्रियाँ आज अवश्य ही कम हैं, परंतु दलितों के समाज इतिहास और उनके चिन्तन को नई दिशा ऐसी ही स्त्रियों से मिल सकती है।

प्रस्तुत शोध–प्रबंध के अध्ययन के अंतर्गत हिन्दी गुजराती क्षेत्र की दलित नारी से जुड़ी कई समस्याएँ हमारे समक्ष आती हैं, इसी के साथ दलित समाज में मौजूद, अशिक्षा, अंधविश्वास, शराब आदि नशा करना, पारिवारिक हिंसा, पितृसत्तात्मक समाज, आदि वंशानुगत सफाई कार्य को सरल समझकर उसी से जुड़े रहने की इच्छा आदि ऐसी कमियाँ हैं जिसके कारण उनकी प्रगति में अवरोध उत्पन्न होता है। आज के दलित साहित्य में दलितों की पीड़ा, वेदना, दुःखी जीवन, कमजोर स्थिति, लाचारी, विवशता आदि का ही चित्रण किया जाता है। इस लिए दलित साहित्य को कुछ लोग 'Monotonous' साहित्य भी कहते हैं। दलित साहित्य में नीरसता एवं एकसमानता का कारण है दलितों का यातनामय इतिहास। आम व्यक्तियों की तरह दलितों के जीवन में भी उल्लास, खुशियाँ, उपलब्धियाँ, आनंद, लक्ष्य की प्राप्ति, प्रसन्नता आदि सकारात्मक अनुभव होते हैं, किन्तु साहित्य में आज इसका अभाव है। आज वह समय आ गया है, जब दलितों के संपूर्ण जीवन अर्थात् नकारात्मक के साथ सकारात्मक अनुभवों के यथार्थ को पाठकों तक पहुँचाया जाए। दलित नारी का संपूर्ण जीवन संघर्षमय अवश्य है, किन्तु इस संघर्षमय जीवन को जीने के साथ उसके जीवन के सुखद पलों का चित्रण करने की भी उतनी ही आवश्यकता है। वह इसलिए ताकि दलित साहित्य मात्र वेदना का साहित्य बनकर न रह जाए। दलित साहित्य में भी संपूर्णतापूर्ण यथार्थ का वर्णन होने से उसके विकास को गति शीघ्रता से मिल सकती है।

समकालीन साहित्य में नारी–विमर्श और दलित विमर्श ये दो पहलू विशेषतः उभरकर आए हैं। प्रस्तुत अध्ययन में एक निश्चित सीमा–मर्यादा में उपलब्ध दलित कहानियों में नारी चरित्रों को समेकित किया गया है। अलग–अलग कालखण्डों में दलित नारी चरित्रों का इसी प्रकार का अध्ययन किया जा सकता है। आलोच्य लेखकों तथा लेखिकाओं की कहानियों पर हिन्दी एवं गुजराती में अलग–अलग कार्य भी सम्पन्न हो सकते हैं। पुरुष लेखक और नारी लेखक के एतद् विषयक विमर्शों पर तुलनात्मक दृष्टिपात हो सकता है। अंत में यही निवेदन है कि मेरे इस शोध कार्य से हिन्दी और गुजराती कहानियों की आलोचना को यदि कुछ गति मिलती है और दलित नारी–विमर्श के कुछ नये आयाम खुलते हैं तथा भविष्यत अध्येता एवं अनुसंधित्सु यदि इससे किंचित मात्र भी लाभान्वित होते हैं, तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूंगी।